

भाव कर्म, द्रव्य कर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

द्रव्य दिखाई पड़ता है। यह पौद्गलिक होता है। वस्तु द्रव्य है। वह जड़ और विनाशी है। भाव चिंतन से जुड़ा है। भाव चेतना की शक्ति है। विज्ञान का कार्यक्रम व्यक्ति सुधार का कार्यक्रम है। मानव को सुधारने से सृष्टि अपने आप सुधार जाती है। कर्म का अर्थ है कार्य करना। हिलना, डुलना, खाना, पीना, चलना, उठना, बैठना कर्म के अन्तर्गत आते हैं। मनुष्य प्रतिक्षण कार्य करता रहता है। सो जाने के बाद भी उसका मन इधर-उधर दौड़ता रहता है। बिना कर्म किये मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है किन्तु फल प्राप्त करने में वह स्वतंत्र नहीं है। फल ईश्वराधीन है। मनुष्य जन्म-जन्मांतर से कर्म कर रहा है और करता रहेगा।

जीवात्मा कर्म करने के लिए है। एक गति से दूसरी गति में आत्मा अन्तराल गति से जाती है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, ज्ञान-अज्ञान के साथ शरीर के माध्यम से दूसरे शरीर में जाती है। आत्मा ज्ञाता दृष्टा है। तेजस शरीर के माध्यम से यह गति करता है। शुद्ध मन द्रव्य मन है और राग-द्वेष, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से संयुक्त मन भाव मन है। जब भाव पवित्र होते हैं तो मन भी पवित्र रहता है। जब भाव विकृत बनते हैं तो मन में भी बुराई आ जाती है।

सभी प्रकार के वैषम्य का मूलकारण कर्म ही है। कर्म से ही मनुष्य सुख-दुःख प्राप्त करता है। जीव की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति से आकृष्ट सुख-दुःख एवं आवरण के हेतु भूत पुद्गल स्कन्ध को कर्म कहते हैं। जीव की अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शुभाशुभ क्रिया द्वारा या मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन कारणों से प्रेरित होकर रागद्वेषात्मक प्रवृत्ति से चुम्बक की तरह आकृष्ट आत्मा, जो करता है, वह कर्म कहलाता है। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध क्रिया के द्वारा होता है। जब कर्म आत्मा के साथ बधते हैं तो उनका फल भी भुगतना पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि अपना किया हुआ कर्म अपने को भुगतना पड़ता है।

कर्म दो प्रकार का माना गया है—भावकर्म और द्रव्यकर्म। रागद्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म है, कार्मण जाति का पुद्गल—जड़तत्त्व विशेष, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है द्रव्यकर्म कहलाता है। जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। जैनागमों में आठ कर्मों का उल्लेख मिलता है जिनसे बंधा हुआ जीव संसार में परिवर्तन करता है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ये आठ कर्म हैं। इन आठ कर्म प्रकृतियों को भी दो भागों में बांटा गया है—घातिकर्म और अघातिकर्म। जो कर्म पुद्गल आत्मा से चिपककर आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं, उनको घातिकर्म कहते हैं। उन कर्मों का मूलोच्छेदन होने से ही आत्मा सर्वज्ञ या सर्वदर्शी बन सकता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिकर्म कहलाते हैं। जो कर्म आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते वे अघातिकर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म हैं। जैन दर्शन के अनुसार जब कोई कर्म किया जाता है तो उस कर्म के परमाणु आठ भागों में विभक्त हो जाते हैं, और आत्मा के स्वाभाविक गुणों को प्रगट नहीं होने देते। आत्मा अनन्तज्ञान सम्पन्न है। संसार में जितनी आत्माएं हैं, उन सबमें अनन्तज्ञान विद्यमान है। परन्तु ज्ञानावरणीयकर्म आत्मा के इस अनन्तज्ञान को आच्छादित कर देता है। जो कर्म आत्मा की साक्षात्कार करने की शक्ति के आवरण करने में निमित्त हैं वे दर्शनावरणीय कर्म हैं। दर्शनावरणीय कर्म प्रतिहारी के समान है। जैसे प्रतिहारी राजा के दर्शन में रुकावट डालता है, वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति को आच्छादित कर देता है। जिन कर्मों के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर सांसारिक सुख—दुःख रूप फलों का अनुभव करता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जो आत्मा के मोहभाव के होने में अर्थात् राग, द्वेष और मिथ्यात्व भाव के होने में निमित्त है वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म मद्यपान करने के समान है।

आयुष्य कर्म के द्वारा आत्मा चारों गतियों में—नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव में भ्रमण करता रहता है। आयुष्यकर्म बेड़ी के समान है। नामकर्म के प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं—शुभ और अशुभ। गोत्रकर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता, निम्नता होती है, उसे गोत्र कर्म कहते

हैं। गोत्र कर्म दो प्रकार का है—उच्च गोत्र और निम्न गोत्र। ये क्रमशः उच्चता—निम्नता, सम्मान और असम्मान के निमित्त बनते हैं। अन्तरायकर्म के कारण आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की शक्ति में विघ्न—बाधाएं या रुकावटें आएँ, पदार्थ पास में होते हुए भी उनका भोगोपभोग न हो सके, उसका नाम अन्तराय कर्म है। अन्तरायकर्म राजा के कोषाध्यक्ष के समान है। जिस प्रकार राजा का आदेश होने पर कोषाध्यक्ष के बिना दिये वह वस्तु नहीं मिलती, वैसे ही अन्तरायकर्म दूर हुए बिना इच्छित वस्तु नहीं मिलती। इस प्रकार जैनदर्शन में कर्म का बड़ा ही वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। इस प्रकार भावकर्म और द्रव्यकर्म दोनों बंधन के कारण है।